Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 12, Issue No. 2, January-2017, ISSN 2230-7540

कुबेरनाथ राय के साहित्य में राष्ट्रीयता

Sushma[1]* Dr. Meenu[2]

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार – ***राष्ट्रीय भावना विशिष्ट मानव समूह में पाई जाने वाली चेतना है, जिसके कारण वह समूह पारस्परिक ऐक्य की भावना से संयुक्त होकर अन्य किसी भी जनसमूह से अपनी पृथक् सत्ता की अनुभूति करता है। वास्तव में इस भावना का सम्बन्ध राष्ट्र से है। राष्ट्र के समक्ष व्यक्ति, दल, प्रान्त, जाति या, धर्म और सम्प्रदाय सब गौण हैं तथा इन सबकी रक्षा राष्ट्र की रक्षा है। जब इनमें संकीर्ण भावना पनपने लगती है तो राष्ट्र का अस्तित्व संकट में आ जाता है। अतः महत्त्वपूर्ण तत्त्व यह है कि सब एकजुट होकर भारत का भाग्य और सुदृढ़ बनाएँ।***

----------X----------

राष्ट्रीयता एक भाववृत्ति है जिसके मूल में आत्मरक्षा और एकत्रा होने की वृत्ति काम करती है। जन-समूह को तब तक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता जब तक उसमें एकता की विशिष्ट चेतना न हो। यह एकता की विशिष्ट चेतना ही वह आधार है जिससे संयुक्त होकर कोई राज्य राष्ट्र का स्वरूप धारण करता है। देश के नागरिक का कत्तव्य है कि वह ऐसे प्रयास करे जिससे उसके देश का नाम ऊँचा हो। हमें अपने मन में देश के प्रति ऐसे भाव रखने चाहिए कि उसके बारे में कहीं भी, कोई भी बात होने पर हमारा सिर गर्व से ऊँचा हो जाए तथा मन आनन्द से झूमने लगे। श्री राय को भी ऐसे ही मानसिक आनन्द की अनुभूत होती थी, जब वे अपने देश का नाम सुनते थे। इस संदर्भ में वे लिखते हैं-'यही कारण है कि जब मैं 'भारत' शब्द को पढ़ता-सुनता या बोलता हूँ तब चेतन स्तर पर इसका सतही अर्थ हिन्दुस्तान तो तुरन्त पाता ही हूँ साथ ही एक विचित्रा प्रकाशमय-संगीतमय अर्थ का मानसिक भोग भी प्राप्त होता है और मैं तब भारत शब्द का अर्थ लगाता हूँ यह भौगोलिक हिन्दुस्तान ही नहीं, बल्कि एक दिव्य कल्पलोक, एक प्रकाशमान चिन्मय जगत जिससे शताब्दी-दर-शताब्दी निरन्तर उस आलोक का वितरण हो रहा है, जो हमारी सारी उपलब्धियों, सारे संस्कारों व सारे कृतित्व के पीछे सक्रिय है और जब-जब एवं जहाँ-जहाँ इस चिन्मय ज्योतिःसरा की धार में रुकावट, व्यवधान या आड़ आ गई है तब-तब और तहाँ-तहाँ हमारे जातीय अस्तित्व का लोप हुआ है और तब मुझे, उस व्याकरणी की, खींचतान कर ही सही, प्रस्तुत की गई बात कि 'भारत' शब्द का संबंध 'भास्वरता' से है और भारत का निरुक्तिगत अर्थ होगा प्रकाशमय या भास्वर लोक, बिल्कुल सही जंचती है, यद्यपि इस बात का ऐतिहासिक आधार नहीं।'[1]

देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए देश के महान् सपूतों ने अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। उनकी इस अनमोल विरासत को बनाए रखने के लिए हमें भी प्रयास करने होंगे। इसके लिए हमें स्वयं को 'स्व' का त्याग करना होता। इसी भाव को प्रस्तुत करते हुए श्री कुबेरनाथ राय लिखते हैं-' . . .आज के नए मनुष्य ने अपने आप को 'स्व' की कोटर में बंद कर लिया है। वह धुरीहीन है। उसकी प्रतिब(ता किसी से नहीं है। देश, राष्ट्र, समाज, परिवार, मानवीय भाव; प्रेम, करुणा, दया, अभिमान आदिद्ध से वह कटकर अलग होकर जीना चाहता है। वह स्वयं को संकुचित करके 'स्व' के भीतर करके चरम निर्वासन को रसपूर्वक भोगने की सोचता है। पर राम का जो निर्वासन हुआ था, उसे वनवास कहते हैं। मुक्त नील आकाश-तले, रम्य दारूण वन में छह ऋतुओं की हवाओं के परिवेश में उन्हें निर्वासन भोगने को कहा गया था- 'स्व' की कोटर में नहीं।'[2]

'स्व' का त्याग करने के साथ-साथ आवश्यकता है उस रचनात्मक दृष्टिकोण की जो देश को विकास के पथ पर अग्रसर करती रहे। इसके बिना देश और देशवासियों का उद्धार संभव नहीं। इसी भाव को गाँधी के माध्यम से समझाते हुए कुबेरनाथ जी कहते हैं-'अतः तुम्हारी निष्ठा और ललक को खूब पहचानता हूँ। परन्तु पुतुल, यदि देश को और अपनी आत्मा को बचाना है तो इस निष्ठा और ललक का त्याग करके एक रचनात्मक और सहज-सरल भंगिमा को अपनाना

www.ignited.in

होगा, श्रमविरोधी, कर्मविरोधी तथा सादगी विरोधी मानसिक अवरोधों का ध्वंस करना होगा। अन्यथा उद्धार असंभव है। गृहविज्ञान से ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानना होगा गृह को। गृहविज्ञान की प्रयोगशाला सुसज्जित रखकर क्या होगा जब गृह ही असुन्दर, विसंगत, उदास और छन्दविहीन रह गया?'[3]

वर्तमान समय में देशभक्ति की आवश्यकता को दर्शाते हुए तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी की काव्य पंक्तियों के माध्यम से उसे उजागर करते हुए श्री राय लिखते है-'यह आज के संदर्भ में हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है कि देशभक्ति के महत्त्व को स्वीकारें और देशबोध को शक्ति का सर्वोत्तम स्रोत मानकर चलें। इसे बदनाम करने के लिए एक दल इसे नाजी या फासिस्ट चिन्ता से जोड़कर देखता है। परन्तु यह भूल जाता है कि भारतीय राष्ट्रवाद सनातन से त्याग, दम, अप्रमाद और अहिंसा से जुड़ा हुआ है और यह सार्वभौम मानववाद का नामान्तर है। 19वीं शती के पुनर्जागरण काल में इसके सर्वोत्तम व्याख्याकार रवीन्द्र नाथ ने 'हे मारे चित्त' नामक कविता मंे भारत वर्ष को 'महामानव सागर' कहा था। इस देश की कहानी को उन्होंने 'ज्ञानधर्मकृत पुण्य काहिनी' के रूप में देखा था। उनकी एक प्रसिद्ध कविता का प्रारंभ है-

'अयि भुवन माहिनी,

प्रथम प्रभात उदय तब गगने

प्रथम सामरव तव तपोवने

प्रथम प्रचारित तव तप भवने

ज्ञान धर्म कृत पुण्य पुण्यकाहिनी।'[4]

देशवासियों की यह देशभक्ति, देशप्रेम देश में फिर से सतयुग ला सकता है। इसी संदर्भ में श्री राय कहते हैं-और यदि गणतन्त्र समाजवाद-सेक्यूलरिज्म के साथ चैथा सूत्रा राष्ट्रीयता जुड़ जाए और ये अपने आदर्श रूप में प्रतिष्ठित होकर संविधान द्वारा सुचिंतित सतयुग ला सके तो फिर माया और असुर के अभाव में इसकी रक्षक भूमिका की तो जरूरत नहीं रहेगी, यह सत्य है, परन्तु तो भी उस काल में इसकी धारक भूमिका का महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा।'[5]

भारत की श्रेष्ठता और एकता का मुख्य आधार इसकी सांस्कृतिक एकता और श्रेष्ठता है। देश की सांस्कृतिक एकता को दर्शाते हुए श्रीराय कहते हैं-'तथ्य तो यह है कि भारतीय संस्कृति एक है, अविच्छिन्न, अविच्छेद्य और अविभक्त है। आज यह कहना कठिन है और साथ ही व्यर्थ श्रम है कि कौन आर्य है और कौन द्रविड़। मैं तो कहता हूँ कि यदि ऐसे ही आर्य-द्रविड़ विभाजन करते जाना है तो फिर एक दिन सभ्यता-संस्कृति की कौन कहे, प्रत्येक भारतीय के शरीर का विभाजन करना होगा। चाहे उत्तर-प्रदेश हो या तमिलनाडु कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके अंग का कोई-न-कोई हिस्सा आर्य या द्रविड़, यह ठीक करना मुश्किल न हो जाए। आखिर तीन हजार वर्षों का संयुक्त जीवन भी कुछ अर्थ रखता है या नहीं?'[6]

यही सांस्कृतिक एकता ही देश को बाह्य व आन्तरिक रूप से जोड़े रखती है। संस्कार ही भारतीयता के चिह्न हैं जो देश को बाह्य व आन्तरिक बल प्रदान करते हैं-'हिन्दुस्तान को कोई बाहर से बाँधने वाली सीमा-रेखा या परिधि नहीं। यह बाहर की ओर निर्बन्ध, मुक्त और विस्तृत है और इसमें महत्त्व है इन्हीं दो अन्तर्वाहिनी रेखाओं का। इन्हीं के इर्द-गिर्द जो संस्कार पैदा होते हैं उनकी सामूहिक संज्ञा है भारतीय मन या हिन्दुस्तानी मन। देश की देह बदल सकती है पर मन की रचना-पुनर्रचना इन दो रेखाओं के इर्द-गिर्द ही होती रहेगी। अतीत में शरशया की यंत्रणा में पड़ा देश इन्हीं दो रेखाओं के बल पर बच निकला और नया रूपान्तर करने में आत्मा खण्ड-खण्ड होकर गिर नहीं पड़ी।'[7]

संस्कृति एवं चिन्तनधारा की विशेषता ऐसी है, जिसमें अशिव में भी शिव के दर्शन होते हैं। इसी विषय में चर्चा करते हुए वे लिखते हैं-'भारतीय चिन्तनधारा और जीवन-दर्शन तथा रस-दृष्टि के अनुसार अशिव के भीतर शिव है, तम के भीतर ज्योति है, रात्रि के भीतर ऊषा है, अमावस्या के भीतर पूर्णिमा है। ये सारी बातें शिव बनाम अशिव आदि परस्पर विरोधी युग्मों की शैली में सोचने वाला मन उपलब्ध नहीं कर पाता है। वह सोच ही नहीं सकता कि अमावस्या के भीतर राका की सूक्ष्तम् कला, षोडशी सोमकला 'सिनीवाली' निहित है एवं पूर्णिमा के भीतर 'कुहू' की सूक्ष्मतम् कला 'अनुमती' रहती है। त्रिगुणात्मक जगत में तीनों गुण सर्वदा सर्वत्रा विद्यमान रहते हैं। शुद्ध सतोगुण तो केवल परमात्मा में संभव है। वे भी जब अवतार लेते हैं तो तमोगुण से पूर्णतः मुक्त नहीं होते, तो मनुष्य और पशु-पक्षी की तो बात ही नहीं।'[8]

भारतीय संस्कृति की आस्तिकता को महत् बताते हुए उसकी समानता नटराज मूर्ति से करते हुए श्री राय कहते हैं-'नटराज मूर्ति भारतीय संस्कृति की महान् आस्तिक परम्परा का प्रतीक है जिसका बीजारोपण अनार्य मन में हुआ, पर अंकुरण एवं संवर्द्धन आर्य-अनार्य दोनों अखिल भारतीय साधना द्वारा हुआ। मुझे तो कभी-कभी लगता है कि यह नटराज स्वयं साक्षात् हिन्दुस्तान है जिसका प्राचीन नाम था 'अजनाभ वर्ष' और जम्बूद्वीप तथा नया

www.ignited.in

संवैधानिक नाम है 'भारत'। इसके ललाट का तृतीय नयन और इसके वामहस्त की अग्नि 'आर्य' का प्रतीक है। इसके शीश पर गंगा की धारा 'निषाद' का प्रतीक है। इसकी डमरू ध्वनि और अभय मंगलहस्त मुद्राएँ द्रविड़ को व्यक्त करती हैं। इसका मुंडमाल शृंगार और सर्प मेखला 'किरात' की अभिव्यक्ति है। इस नटराज का नृत्य हमारी संस्कृति की चतुर्मुखी सिसृक्षा का नृत्य है। जहाँ-जहाँ तक यह नृत्य जाता है। वहाँ-वहाँ तक हमारी 'यज्ञ-भूमि' का विस्तार होता जाता है। यह नटराज प्रतिमा उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम के चतुर्दिक भारत को व्यक्त करती है।'[9]

वर्तमान समय में भारतीयों की मानसिक स्थिति इस तरह की है कि वे पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति को अपनाने के पीछे दौड़ रहे हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि भारतीय वैचारिक सम्पदा ही मानवता को सही रास्ता दिखा रही है, इसी संदर्भ में श्री राय, नरेश मेहता के विचारों को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-'आज हमारी आधारभूत राष्ट्रीय चेतना हमसे छीनी जा रही है। कितनी विचित्र बात है कि जब पश्चिम के सारे मनीषी और विद्वान इस बात को दबे हुए या घोषणात्मक रूप में मानते हैं कि भारत के पास स्पष्टतः ऐसी वैचारिक सम्पदा है जो सम्पूर्ण मानवता को दिशानिर्देश कर सकती है, लेकिन इसके विपरीत हमारे देश के नियामक बार-बार यह कहते हैं कि भारत के पास पश्चिम के समकक्ष कोई खड़ा होने लायक आधारभूत जीवन दर्शन नहीं। इस नाते राष्ट्र की कल्पना कितनी अभारतीय हुई, उतनी ही उन नियामकों के लिए सुविधाजनक भी हुई। भाषा और भाव की दृष्टि से शासन राष्ट्रीय मानस से अछूता ही रहा। इसी कारण सर्वप्रभुता-सम्पन्न यह राष्ट्र विघटित और विच्छिन्न होने लगा। हम अपने इतिहास, परम्परा और संस्कृति तथा धर्म को अपशब्द कहने के लिए बाध्य किए जा रहे हैं।'[10]

भारत देश एकता की अनूठी मिसाल है। इस देश में आन्तरिक और बाह्य दोनों एकता पाई जाती हैं। भारतीय भाषा, खान-पान, रहन-सहन सभी में एकत्व के दर्शन होते हैं इसी एकता को दर्शाते हुए श्री राय लिखते हैं-'मेरी तो धारणा है कि भारत में कहीं भी कोई भी परिवार चाहे धनी हो या गरीब, पर कितना संस्कारशील है, इसकी जाँच उसकी रसोई में बनी दाल के द्वारा ही होती है। दाल या इसी का प्रतिरूप सांभर और कढ़ी, पारिवारिक संस्कृति का थर्मामीटर हैं। आज भारत विभेद पर जोर दे रहा है, क्षेत्रीयता पर जोर दे रहा है, परन्तु चार चीजें सर्वत्रा मिलती हैं और चारों भारत के व्यक्ति की विशेषता के मूल आधार हैं। वे है-वेदान्त दर्शन, हिन्दी भाषा, दही और दाल ये हर जगह हैं। 'दूध-भात' हमारी महत्त्वाकांक्षा है, पर दाल-भात या 'रोटी-दाल' रोज-रोज का सहज यथार्थ जीवन। जहाँ 'दाल' नहीं, वहाँ दाल की बेटी 'कढ़ी' है। अथवा उसकी छोटी तेज-तर्रार बहन सांभर है।'[11]

भारतीय खान-पान की श्रेष्ठता को दर्शाते हुए वे एक स्थान पर लिखते हैं-'दुनिया में तुर्की खाना श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु सम्मानित विदेशी भोजकों की राय है कि हिन्दुस्तानी खाने के सामने यह भी झक मारता है। क्यों न हो ऐसा? प्रकृति ने चीनी और मसाले हिन्दुस्तान को छोड़कर और किसी को दिए कहाँ? कहीं मिर्च है तो कहीं पुदीना। ये गरम मसाले मनुष्य जाति के इतिहास में अजब-गजब होली दिवाली खेले हैं और इन्हीं के लोभ में इतिहास दाएँ-बाएँ, पूरब-पश्चिम मोड़ लेता रहा।[12]
भारतीय धर्म और संस्कृति को समझने के लिए अपनत्व की आवश्यकता है। अपनत्व चाहे भारतीय हो या अभारतीय, इससे हमारी संस्कृति को कोई फर्क नहीं पड़ता। विदेशियों द्वारा भी इसके मर्म को आसानी से समझा जा सका है, आवश्यकता है सिर्फ अपनत्व की। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्री राय लिखते हैं-'भारतीय धर्म की सही पहचान के लिए इसके उलझे हुए पेचीदे रूप में प्रवेश करके इसकी इतिहास धारा के मर्म में उतर कर इसे समझना पड़ता है। 'बाहरी' या 'विदेशी' बनकर इसे समझ पाने में कठिनाई है। दाराशिकोह, मैक्समूलर, सरजॉन, वुडरपफ, श्रीमती एनीबेसेंट तथा सिस्टर निवेदिता इसके भीतर प्रवेश करके भारतीय मनोभूमि के साथ एकाकार हो गए तब इसे समझ गए। वस्तुगत दृष्टि और बात है, परन्तु बेगानापन यानी बहिरागत-दृष्टि और बात है। दोनों में प्रभेद है। पहली दृष्टि वैज्ञानिक है, परन्तु दूसरी दृष्टि है-एकांगी और पूर्वाग्रही। बेगानापन तथ्य के मर्म में प्रवेश करने में बाधा देता है और पूर्वाग्रहों का व्यूह बनाता चलता है। भारत का बेगाना या बहिरागत बनकर समझा नहीं जा सकता।[13]

भारतीय धर्म सभी धर्मों को अपनाए हुए है। भारतीय धर्म के एकत्व को दर्शाते हुए श्री राय लिखते हैं-'भारतीय धर्म का वह रूप जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं वह तो आदिम किरात-निषाद के लोकधर्म, यथा वृक्ष पूजा, नदी पूजा, यक्ष-अप्सरा-गन्धर्व पूजा, डीह-भूत-प्रेत पितर पूजा और द्राविड़ों के पुष्प कर्म, भक्तिभावना आदि के साथ-साथ लोक संस्कृति के सारे अंधविश्वासों, कथा-कहानी-गीत-नृत्य, सारे कल्पना विलास को अपने में समेटता हुआ एक बहुरूपी 'राष्ट्रीय' आकृति को अपने साथ लेकर चलता है और देश के इतिहास के भीतर विकसित होता है।'[14]

हिन्दू धर्म ही देश की एकता का आधार है। जहाँ यह धर्म कमजोर हुआ वहाँ देश कमजोर हुआ अतः देश को सशक्त बनाने के लिए हमें इसके एकत्व पर जोर देना होगा, इसी भाव

www.ignited.in

को स्पष्ट करते हुए श्री राय कहते हैं-जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं, जो बौद्ध, जैन, सिक्ख और सनातन सम्प्रदायों की सामूहिक संज्ञा है। हिन्दुस्तान की प्रतिभा की उपज है और हिन्दुस्तान की जिजीविषा से जिसका जैविक संबंध है-यही है जो हमें आसेतु हिमाचल बांधे है, धारण किए है, साथ-साथ चला रहा है। जहाँ ये कमजोर हैं वहाँ हिन्दुस्तान कमजोर है। जहाँ यह बिखर गया वहाँ हिन्दुस्तान बिखर गया। यह इतिहास का महासत्य है और यह महासत्य गरजकर अपनी माँग सामने रखता है कि यदि राष्ट्र का मानसिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक स्वास्थ्य ठीक रखना है तो इस हिन्दू धर्म को स्वस्थ रखो।[15]

देशभक्ति एक ऐसी अलौकिक अनुभूति है जो क्षुद्रता की सीमाओं को तोड़कर हमें मनुष्यत्व से जोड़ती है और हमें गौरव की अनुभूति कराता है-'भाषा और सम्प्रदाय को अतिक्रान्त करते हुए जिस देशबोध या भारत बोध का विकास किया गया है वह हमें परम उदार और रमणीय बनाता है। वह क्षुद्रता की सीमाओं को अतिक्रान्त करके हमें सम्पूर्ण मनुष्यत्व से जोड़ता है। उसे छोड़कर अब भाषा और सम्प्रदाय पर आधारित राष्ट्रवाद का वरण करना पीछे लौटना है।' भारतीय राष्ट्रवाद अन्य देशों के राष्ट्रवाद से भिन्न तथा श्रेष्ठ है। इस पर विचार करते हुए श्री राय लिखते हैं-'भारत की विश्व तीर्थ के रूप में कल्पना जर्मनी बर्बर राष्ट्रवाद से सर्वथा एक भिन्न तथ्य है। यह उदार चित्त से प्रतिष्ठित सार्वभौम मानववाद पर आश्रित देशबोध की एक रमणीय कल्पना है। यह स्मरण दिलाती है कि हमारा भी एक मिशन है। हमारी भी एक प्रतिज्ञा है और हमारी एक प्रार्थना है। . . . हम विश्व को भद्र करें और अपने नीरक्षीर विवेक से विश्व के माध्यम से स्व भी भद्र हो। आर्य शब्द का क्षुद्र प्रजातिगत अर्थ तो नवशिक्षा की देन है। यह हमारा अपना निजी अर्थ नहीं।'[16]

राष्ट्रीयता का यह भाव मनुष्य में कूट-कूट कर भरा होता है। परिस्थितियाँ भले ही हमारे विपरीत हो राष्ट्रीयता की भावना कमजोर होती दिखाई नहीं देती। 1947 से पहले भारत देश भले ही राजनीतिक दृष्टि से गुलाम था परन्तु वैचारिक और मानसिक दृष्टि से वह अन्य देशों का गुरु ही रहा है। इसने हमेशा विश्व चिन्तन को समृद्ध किया है। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कुबेरनाथ जी लिखते हैं-फ्हमारे अन्दर 1947 से पहले यह 'देशबोध' मौजूद था। फलतः गुलामी के बावजूद हमने विश्व संस्कृति और चिन्तन को प्रभावित किया, रवीन्द्रनाथ, गांधी और अरविन्द के माध्यम से। चीनी, जापानी, रूसी, अरबी और अंग्रेजी-फेंच-जर्मन के शब्द कोषों में सर्वोदय, अहिंसा, सत्याग्रह, योग ब्रह्म आदि शब्दों का प्रवेश हो जाना इस बात का सबूत है कि हमने विश्व-भाषा और चिन्तन को समृद्ध किया है। यह इस बात का सबूत है कि हमने केवल लिया ही नहीं है, दिया भी है। हम दाता भी रहे हैं, अपनी राजनीतिक गुलामी के बावजूद।[17] वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीयता की भावना तथा देशभक्ति सर्वथा उपयुक्त है। राष्ट्रीय कवियों के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करते हुए श्री राय लिखते हैं-'हिन्दी में इस 'ज्ञान-धर्म' पर आधारित राष्ट्रीयता के कवि दो हैं। प्रथम हैं 'मैथिलीशरणगुप्त', जिन्होंने 'भारत-भारती' के माध्यम से इसका प्रस्थान-बिन्दु रचा था और उस प्रस्थान-बिन्दु का उच्चतम् विकास हम पाते हैं 'दिनकर' की कविताओं और विशेष रूप से उनके महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' में। इसी अर्थ में जयप्रकाश नारायण ने 'कुरुक्षेत्र' को आधुनिक युग की गीता कहा था। . . .मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर ने भी भारतीय पुराणों का आश्रय लेकर अपनी इसी देशबोध की भावना को अभिव्यक्ति दी थी। 'दिनकर' की कविता 'किसका नमन करूं मैं भारत, किसका नमन करूं मैं' इसी भाव को अभिव्यक्त करती है कि भारत 'देह' नहीं 'मन' का वाचक है। . . . गुप्त जी ने भी अपने महाकाव्यों के माध्यम से देश के प्राचीन आदर्श, त्याग, तप, अप्रमाद और अहिंसा का ही आदर्श रखा है। उनके नायक रामचन्द्र, गौतम बुद्ध से लेकर दिवोदास तक एक ही बात कहते हैं कि मनुष्यत्व को इतना ऊपर उठा दो कि स्वर्ग या देव-लोक धरती पर ही विकसित हो जाए।[18]

राष्ट्रीयता अजर-अमर है। राष्ट्रीयता के कल्याणकारी रूप की चर्चा करते हुए कुबेरनाथ जी लिखते हैं-'राष्ट्रीयता और धर्म अनेक मंगलकारी कार्यों के आधार रहे हैं। ये अटूट शक्तियों के स्रोत हैं। राष्ट्रीयता व्यक्ति की तरह कभी नहीं मरती और अन्त में अपना दाँव लड़ा ही लेती है। गत महायुद्ध में रूस की रक्षा के लिए सोवियत कलाकारों ने ईगोर-गाथा को राष्ट्रीय गाथा का रूप दे दिया। वोल्गा एवं पीटर महान् की प्रशस्तियाँ भी लिखीं। इन राष्ट्रीय मिथों में शक्ति का विद्युत केन्द्र छिपा है जिससे समस्त जाति किसी भी क्षण अनुप्राणित की जा सकती है। आत्मिक शक्ति के इस महत् स्रोत को तिरस्कृत करने के बजाए हम इसे शुभ दिशाओं की ओर उन्मुख कर सकते हैं।[19] जनता में देशभक्ति जागृत कर हम जनशक्ति का प्रयोग रचनात्मक कार्यों में कर सकते हैं। इसी भाव को व्यक्त करते हुए श्री राय लिखते हैं-'पर हम चाहें तो हमें ऐसा उपाय मिल सकता है जिससे व्यक्ति की कुण्डली खोलकर उसे मुक्त विहार, मुक्त वायुपान के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जिससे वह अपने अहं को समूह के साथ संयुक्त कर दे तथा 'स्व' एवं 'कम्यून' के बीच अपना गृह भी सुरक्षित रख सके। इस देश को सर्वथा मध्यम मार्ग ही रचा है और वही चला है। 'तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाय' इसी भांति राष्ट्रीयता के भावात्मक पहलू पर जोर देकर उसे हम

www.ignited.in

गरलहीन बना सकते हैं एवं राष्ट्र शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों के लिए कर सकते हैं।'[20]

संदर्भ सूची:

1. कुबेरनाथ राय, कामधेनु, पृ. 86
2. वही, गन्धमादन, पृ. 452
3. कुबेरनाथ राय, पत्रमणिपुतुल के नाम, पृ. 18
4. वही, वाणी का क्षीर सागर, पृ. 58
5. कुबेरनाथ राय, दृष्टिअभिसार, पृ. 170
6. कुबेरनाथ राय, रस आखेटक, पृ. 83
7. वही, रस आखेटक, पृ. 110
8. वही, पर्ण मुकुट, पृ. 62
9. कुबेरनाथ राय, कामधेनु, पृ. 57
10. कुबेरनाथ राय, वाणी का क्षीर सागर, पृ. 71
11. कुबेरनाथ राय, गन्धमादन, पृ. 32
12. वही, पृ. 115
13. वही, उत्तरकुरु, पृ. 111
14. कुबेरनाथ राय, उत्तर कुरु, पृ. 108
15. वही, प्रिया नीलकंठी, पृ. 94
16. कुबेरनाथ राय, वाणी का क्षीर सागर, पृ. 58
17. वही, पृ. 57
18. कुबेरनाथ राय, वाणी का क्षीर सागर, पृ. 58
19. वही, विषाद योग, पृ. 184
20. कुबेरनाथ राय, विषाद योग, पृ. 185

Corresponding Author

Sushma*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

www.ignited.in